नगरीय सीमा से निकटस्थ गाँव में जातिगत कट्टरता में कमी

–डॉ. अखिलेश कुमार पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर (समाजशास्त्र विभाग)
श्री सुदृष्टि बाबा पी0 जी0 कालेज
सुदिष्टपुरी–रानीगंज, बलिया (उ0 प्र0)

सारांश

नगरों की उत्पत्ति कब और कहाँ हुई, यह निश्चित रुप से बताना तो कठिन है, परन्तु यह निश्चित है कि नगरीय सभ्यता का इतिहास बहुत पुराना है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की नगरीय सभ्यता और संस्कृति हमें बताती है कि भारत में ईसा पूर्व ही नगरों की स्थापना हो चुकी थी। इस तथ्य से विद्वान सहमत है कि हड़प्पा संस्कृति एक मौलिक संस्कृति थी और इसके निर्माता द्रविण थे। द्रविड़ों को नगरीय सभ्यता के विकास का जनक माना जाता है। पहली शताब्दी के मध्य भारत में नगरों का विकास तेजी से होने लगा था। सबसे बड़ा नगर पाटलिपुत्र (अब पटना) था। वह गंगा के तट के साथ कई किलोमीटर तक फैला हुआ था। नगर के विकास के साथ जहाँ मानव समाज की क्षमता, योग्यता और परिपक्व बुद्धि का इतिहास जुड़ा है, वही उत्पादन के विकसित मानवीय साधनों का इतिहास भी समाहित है। अनेक समाजशास्त्रियों और इतिहासवेत्ताओं ने नगर की उत्पत्ति पर शोधपूर्ण कार्य किये है। वे विभिन्न तथ्यों के माध्यम से नगरों की उत्पत्ति के काल को स्थापित करना चाहते हैं।

Keywords: नगरीय, समाजिक असमानता, जातिवादी, स्तरीकरण, औद्योगीकरण।

18 वीं शताब्दी औद्योगिक क्रान्ति का युग था। उद्योगों के विकास ने जीविका के अनेक विकल्प प्रस्तुत किये। व्यक्ति मात्र खेती पर ही निर्भर नहीं रहने लगा। नगरों का विकास के साथ औद्योगिक और व्यावसायिक ढाँचें में आमूल–चूल परिवर्तन हुए। औद्योगिक क्रान्ति ने समाज के मूल परम्परागत व्यवसायिक ढ़ाचें को परिवर्तित कर दिया। बड़े विशाल कारखानें, मिल, फैक्टरी आदि की स्थापनाओं ने व्यक्ति को नगर में एक नये प्रकार की चेतना दी। उसे धन, शक्ति और समाज में एक नया स्तर दिया जो जातीय संरचना से इस प्रकार के परिणाम सामाजिक असमानता के फलस्वरुप जन्म लेते हैं। अरस्तु के अनुसार तीनों वर्गों से जो भिन्नताएं है उनका आधार असमानता है। ये भिन्नताएं तीन वर्गो की भी सूचक हैं। सम्पत्ति के कारण ही इन वर्गो का जन्म हुआ है, जो स्थिति एवं कार्यो में विभाजित है।

'कस्बें' को गाँव और नगर के बीच की श्रेणी माना जाना है। कई बार कस्बें को उपनगर भी कहा जाता है। जनसंख्या के आकार की दृष्टि से जब बड़ें गाँवों के लोगों की प्रवृत्तियाँ नगरवासियों की तरह हो जाती है तो उन्हें गाँव न कहकर 'कस्बा' कहा जाता है। इस प्रकार कस्बा मानवीय स्थापना का स्वरुप है जो अपने जीवन क्रम एवं क्रियाओं में ग्रामीणता और नगरीयता दोनों प्रकार के तत्वों को अन्तर्निहित करता है। नगरों के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका औद्योगिक क्रान्ति की रही है। नगरों में सैकड़ों की संख्या में फैक्टरी, मिल, कारखानों की स्थापनायें हो रही हैं। औद्योगिक क्रान्ति ने नगरों में नौकरी के असंख्य विकल्प प्रस्तुत किऐ है। जिस स्थान पर भी बड़ें कारखानों खुलते है, वह कालांतर में एक नगर बन जाते है, क्योंकि इनमें हजारों लाखों लोग कार्य करते हैं। इनकी विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अनेक छोटे–छोटे बाजारों की स्थापनायें होती है। यातायात के साधनों में वृद्धि होती है। ये सब

मिलकर एक नगर को नये रुप में स्थापित करते है। नगरों की उत्पत्ति गाँवों से हुई। बड़े–बड़े विशाल गाँव ही कालान्तर में नगरों में परिवर्तित हो गये। नगर वास्तव में गाँव में दृष्य रुप में उपस्थित था, किन्तु गाँव ही धीरे–धीरे नगरों में परिवर्तित हो गये। बड़े विशाल कारखानों, मिल, फैक्टरी आदि की स्थापनाओं ने व्यक्ति को नगर में एक नये प्रकार की चेतना दी उसे धन, शक्ति और समाज में एक नया स्तर दिया जो जातीय संरचना से बिलकुल भिन्न था, जिसे आज हम वर्ग का नाम देते है। नगरों के व्यावसायिक ढ़ाँचें तरह–तरह के काम करने वाले श्रमिकों के नये वर्गो की संरचना की। इस वर्ग की अवधारणा में जातीय अवधारणा को श्रेष्ठता और निम्नता की भावना विलीन हो गई। नगरीय व्यवसायिक ढ़ाँचें में वर्ग की भूमिका जाति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई।

नगर हमेशा से विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों का पुंज रहा है। ये उघोगों और व्यवसायों के केन्द्र–स्थल रहे हैं। ये विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन के केन्द्र रहे हैं। यहाँ हजारों की संख्या में छोटे–बड़े कारखाने, मिल और फैक्टरी हैं। जिनमें हजारों श्रमिक अपनी योग्यता, क्षमता, कुशलता और विशेष योग्यता के आधार पर कार्य करते है।

औद्योगीकरण और यंत्रीकरण की प्रगति के साथ नगर व्यावसायिक मण्डी बनते गए। जाति–व्यवस्था से जुड़ी परम्परात्मक कार्य–प्रणाली नगर के मुँह के बल धराशायी हो गई। नगर में जाति के आधार पर जो परम्परात्मक श्रेणिया बनी थी, वे नगर में टूट गई। यहाँ विभिन्न छोटी–बड़ी जातियों के व्यक्ति एक–साथ एक मिल, फैक्टरी, कारखाने और सरकारी कार्यालयों में कार्यरत हैं। इस तरह नगर में जाति के स्थान पर समान योग्यता रखने वालों के वर्ग बन गए। ये जातीय–बन्धन से मुक्त हैं। कोई भी निर्धन वर्ग का व्यक्ति धनी वर्ग में अपने परिश्रम से पहुँच सकता है। वर्ग का आधार मुख्यतः आर्थिक है।

भारत गाँवों का देश के नाम से जाना जाता है। इसकी मुख्य पहचान खेतिहर देश के रुप में है। इनका मुख्य व्यवसाय खेती है। पहले खेती के मालिक जमींदार, तालुकेदार और और राजा हुआ करते थे। इस सामन्तवादी सामज में मूलतः दो वर्ग थे। एक जमींदार जो भूमि का मालिक तथा दूसरा भूमिहीन श्रमिक जो अपने श्रम को बेचकर मौसमी रोजी–रोटी अर्जित करता था। ठीक उसके विपरीत नगर हैं जो विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के केन्द्र हैं। औद्योगीकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण ने नगर के व्यवसायिक ढ़ाँचें को बदल दिया है। नगरीय वर्ग व्यवस्था ने मुख्यतः सामाजिक स्तरों को दो स्वरुपों में विभाजित किया। दो वर्गो का जन्म हुआ। प्रथम पूँजीपति वर्ग और दूसरा श्रमिक वर्ग है जो अपने श्रम को बेचकर जीविका अर्जित करता है। वास्तव में नगरों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार व्यवसायिकता है। यहाँ तरह–तरह के उद्योग–धन्धें हैं। तरह–तरह के मिल, फैक्टरी और कारखानें है जिसमें विभिन्न प्रकार की योग्यता और कुशलता रखने वाले व्यक्ति कार्य करते है।

इस लिए नगरों में स्तरीकरण का आधार वर्ग है। यहाँ मुख्यतः दो वर्ग देखे जाते हैं– एक पूँजीपति वर्ग और दूसरा श्रमिक वर्ग। इसके साथ ही साथ आय के आधार पर तीन–वर्ग और भी है। उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। नगर में यही सबसे व्यवहारिक प्रचलित वर्ग हैं। सरकार की आर्थिक योजनाओं का आधार भी यही वर्ग होते है। सम्पूर्ण नगरीय समाज को आर्थिक दृष्टि से इन्हीं तीन स्तरों में विभाजित किया जाता है। इनकी आर्थिक–सामाजिक स्थिति

एक दूसरें से भिन्न होती है। हजारों जातियों को विभिन्न स्तरों पर विभाजित करना एक कठिन कार्य है। इसीलिए, नगरों में वर्ग के आधार पर स्तरीकरण किए जाते है।

औद्योगिक और व्यवसायिक ढ़ाँचें के उद्योगों में जातियों का प्रबन्धन में कोई संस्तरण अथवा सोपान नहीं होता बल्कि व्यावसायिक कट्टरता कम परिलक्षित हो रही है के क्रम में सर्वप्रथम उच्च जाति उत्तरदाताओं में कुल 50 उत्तरदाताओं में से 44(88) प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने विचार हाँ में प्रस्तुत किये तथा 06 (12) प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने विचार नहीं में प्रस्तुत किये। इसी क्रम में पिछड़ी जाति के उत्तरदाताओं में कुल 147 उत्तरदाताओं में से 89 (60.54) प्रतिशत उत्तरदाता ने अपने विचार हाँ में प्रस्तुत किये जबकि 58 (39.46) प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने विचार नहीं में प्रस्तुत किये। इसी क्रम में अनुसूचित जाति के उत्तरदाताओं में कुल 103 में से 52 (50.49) प्रतिशत जबकि 51 (49.51) प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने विचार नहीं में प्रस्तुत किये।

शोधकर्ता के क्षेत्रीय अध्ययन विभिन्न पक्षों पर उत्तरदाताओं के प्राप्त उत्तरों के सामान्यीकरण, वर्गीकरण एवं विश्लेषण के फलस्वरुप कुछ निष्कर्ष उभरकर सन्मुख आये जो दृष्टिगत है कि उच्चजाति के साथ–साथ पिछड़ी जाति और निम्न जाति उत्तरदाताओं ने भी स्वीकार किया कि नगरीय सीमा से निकटस्थ गाँव में जातिगत कट्टरता कम परिलक्षित हो रही है। इसका प्रमुख कारण नगर के निकटस्थ गाँव में सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक परिवेश जातिगत कट्टरता के लिए उपयुक्त नहीं है धीरे–धीरे प्रभु जाति का वर्चस्व, धार्मिक उन्माद, आर्थिक प्रबलता, संक्रचित सोच का दायरा और शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार, पिछड़ी जातियों, निम्न जातियों के मानसिक और शरीरिक शोषण में कमी, सरकारी सुख सुविधाओं की बेतहासा वृद्धि ने नगरीय सीमा से निकटस्थ गाँव में जातिगत कट्टरता में कमी लायी है। प्रबन्ध की दृष्टि से किसी से किसी मिल, कारखानें और कार्यालयों में कर्मचारियों का एक संस्तरण होता है, जैसेंः– एक मैनेंजिंग डायरेक्टर, एक जनरल मैनेजर, एक मैनेजर, एक सुपरवाइजर, एक बाबू , एक चपरासी, एक सफाई, कर्मचारी आदि। इसलिए नगरों में स्तरीकरण के आधार पर स्तरीकरण करना ग्रामीण समाज में संभव है पर नगरों में नहीं। इसलिए जाति एक ऐसे स्तरीकृत सम्बन्ध को वयक्त करती है जिसमें व्यक्ति जन्म लेता है। जाति जन्म के साथ निर्धारित हो जाती है। संस्तरण की यह प्रणाली हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का आधार है। नगर में जातियों का जन्म के आधार पर बना संस्तरण लगभग व्यावसायिक और सरकारी कार्यालयों में टूट चुका है।

नगरीय सीमा के निकटस्थ गाँव में जातिगत कट्टरता में कम परिलक्षित हो रही है।

तालिका

जति परिवर्त्य	हाँ		नहीं		योग
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
सामान्य	44	88.00	06	12.00	50
पिछड़ी जाति	89	60.54	58	39.46	147
अनुसूचित जाति	52	50.49	51	49.51	103

योग	185	61.67	115	38.33	300

तालिका संख्या 26 से स्पष्ट है कि जाति परिवर्त्य द्वारा 300 उत्तरदाताओं के विचार लिये गये हैं। जिसमें मूल प्रश्न नगरीय सीमा से निकटस्थ गाँव में जातिगत कट्टरता कम परिलक्षित हो रही है, इसमें कोई दो मत नहीं है कि बदलते हुए व्यावसायिक ढ़ाचें का प्रमुख स्तरीकरण पर पड़ता हैं। इसका प्रभाव परम्परागत आधारों पर पड़ता है, जैसेः– जाति और वर्ग। साथ ही नगर की संस्थाओं जैसेः– परिवार पर भी इसके प्रभाव को देखा जा सकता है। सामाजिक संरचना समाजशास्त्र के अध्ययन का मुख्य विषय है। नगरीय सामाजिक संरचना की अपनी विशिष्ट पहचान और प्रकृति है प्रत्येक नगर और महानगर की संरचना भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। उसमें व्यक्तियों के पद भूमिकाओं और स्थितियाँ विभिन्न प्रकार की होती है। नगरों की आर्थिक–सामाजिक संरचनाओं में असमानतायें विद्यमान है। नगरीय संरचना में अन्य उप–संरचनायें भी समानान्तर रुप से चलती रहती है। वे परस्पर इतनी गुंथी होती है कि उनका प्रभाव एक–दूसरे पर पड़ता है। इसी तरह नगर की व्यावसायिक संरचना उद्योगों से निर्मित हुई है। इसका प्रभाव व्यक्तियों के स्तर, स्थिति और भूमिकाओं पर पड़ता है।

औद्योगीकरण के परिणाम स्वरुप नगरीकरण ने गति पकड़ी। गाँव कस्बें बनने लगे, कस्बें नगरों में परिवर्तित हुऐ और धीरे–धीरे महानगर, अपने विशाल स्वरुप में उभरकर सामने आये। यह सब आधुनिकता का प्रभाव था। 20 शताब्दी में पहुँचकर आधुनिकता का परिवेश अधिक व्यापक हो गया। समाजशास्त्रियों का मानना है कि नगरीय जीवन और आधुनिकता साथ–साथ चलती है। नगरीय जीवन और आधुनिकता एक–दूसरे में इतनी घुल–मिल गई है कि उसके अन्तर कर पाना मुश्किल है नगरों में बहुत बड़ी मात्रा में आवासीय इकाइयाँ होती है और जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। नगर पुराने समय से ही राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र रहे हैं। नगर प्रायः आधुनिक परिवेश के लोगों की शरणस्थली होती है।

नगरों में आवश्यकता पूर्ति के साधनों की बहुलता होती है। यहाँ लोगों में व्यक्तिगत स्वंतन्त्रा देखी जा सकती है। किसी भी स्थान पर जनसंख्या वृद्धि किन्हीं कारणों से जब होती है। तब वे क्षेत्र सरलता से नगर का रुप धारण कर लेते है। आज गाँव कस्बें और नगर महानगर होते जा रहे है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि से अनेक छोटे–बड़े उद्योगों की स्थापना होती है। छोटे–बड़े बाजार बन जाते है। व्यवसाय के अनेक मार्ग स्वतः खुल जाते है। ये सभी कारण संयुक्त रुप से नगर को बनाने में सहायक है। गाँवों की अपेक्षा नगरों में जीवन अधिक सुरक्षित है। पुलिस व्यवस्था छोटे–बड़े, निर्धन–धनी सभी की जान–माल की समान रुप से रक्षा करती है। बाजारों को लूट और आगजनी से बचाती हे। इसके साथ ही साथ तुरन्त चिकित्सा की भी सुविधा यहाँ प्राप्त है। इसीलिए व्यक्ति गाँव छोड़कर कस्बों और नगरों में बसता है। और कस्बें नगर बन रहे है और नगर महानगर में परिणत हो रहे है। आज कृषि व्यवसाय में मशीनों के माध्यम से जुताई, कटाई, बुआई आदि होने लगी है। इस व्यवसाय में अब अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं रह गयी है। एक मशीन अनेक व्यक्तियों का काम करती है। इसीलिए ग्रामीण व्यक्ति मिल, फैक्टरी और कारखानों में कार्य करने लगा है। इसलिए छोटे–छोटे कस्बें भी अब नगर बनते जा रहे है। इस तरह नगरों में नए–नए व्यवसाय फल–फूल रहे है। समान काम करने वालों का एक नयरीय गील्ड बन रहा है। एक नये वर्ग की स्थापना हो रही है।

व्यवसायिक ढाँचे में जो वर्ग बन रहे है उनका मूल आधार पूँजी और श्रम ही है। नगरों और महानगरों में शिक्षा एक व्यवसाय बनती जा रही है, जहाँ लाभ है। पूँजी पति बड़े–बड़े पब्लिक स्कूल और कालेज खोल रहे हैं। मनचाही फीस वसूल रहे हैं। वास्तव में नगर व्यवसाय के केन्द्र होते हैं, जहाँ नित्य नए उत्पाद बाजार में आते हैं। इसीलिए नगर से जुड़े असंख्य वर्गो का आधार सम्पत्ति, पूँजी और श्रम है। इसीलिए मैक्स बेबर यह कहते है कि वस्तुओं पर अधिकार और आमदनी की सुविधायें नगरों में वर्गो का निर्धारण करती हैं। इसी के आधार पर वर्ग–समूहों को निश्चित सामाजिक स्थिति प्राप्त होती है। नगर में धनाढ्य व्यवसायी की स्थिति सामान्य व्यक्तियों से ऊँची होती है और निर्धन लोगों और श्रमिकों की स्थिति नीची होती है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि नगरों में धनी वर्ग के लोग, कलाकार, लेखक, प्रशासनिक अधिकारी, नेतागण, व्यवसायी आदि स्वर्ग जैसी जिन्दगी गुजारते है। यह कथन भी उतना ही उचित है कि ये सब सुविधाऐं और स्वतंत्रता आम जनता को उपलब्ध नहीं हैं नगरों में भी जाति, प्रजाति, स्थानीयता आदि के आधार पर विभिन्न समूहों की अपनी–अपनी पहचान है। फिर भी, ये अपने सामूहिक हितों और जीवन के आस्तित्व के लिए एक दूसरे से जुड़ें दिखाई देते है।

नगरीय जनसंख्या मुख्य रुप से गैर–कृषि व्यवसायों में संलग्न होती है। इनमें अधिकतर दफ्तरों एवं कारखानों में नौकरी करने वाले होते है। कार्य हेतु वे दूर–दराज के क्षेत्रों में आते हैं। नगरों में व्यापार करने वालों की संख्या भी अत्यधिक होती है। नगरों में आठ प्रकार के व्यवसाय एवं पेशें अत्यधिक प्रतिष्ठित माने जाते है। चिकित्सा व्यवसाय, कानूनी व्यवसाय, शैक्षिक व्यवसाय, वैज्ञानिक व्यवसाय, इंजीनियरिंग व्यवसाय, प्रबन्धकीय व्यवसाय, समाज कार्य एवं पत्रकारिता व्यवसाय। ये सभी व्यवसाय ब्रिटिश शासन के प्रारिम्भक काल से ही विकसित है। जहाँ तक आधुनिक वाणिज्य एवं व्यापार का सम्बन्ध है इसमें वही परम्परागत वैश्य जातियाँ जैसेंः– अग्रवाल, मारवाड़ी, जैनी खोजा, सेट्टी तथा खत्री पहल करने में आगे रही। यही नहीं बल्कि इन जातियों ने स्थानीय गतिशीलता को भी बढ़ाया क्योंकि पुराने व्यावसायीक केन्द्रों का महत्व घट रहा था और नऐ वयापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र विकसित हो रहे थे।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त नगरीकरण की नूतन प्रवृत्तियाँ पूँजीवादी व्यवस्था, वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद से जन्मी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति की सोच, मानसिकता और जीवनशैली को परिवर्तित कर रही है। ये नूतन प्रवृत्तियाँ नगरीय समाज में जातिगत मानसिकता में कमी ला रही है। समयानुसार अपने को बदलने के लिए प्रोत्साहित करती हैं, समयानुसार ये प्रवृत्तियाँ अपना पुनः नया स्वरुप धारण करेंगी। इस प्रकार नगर में निरन्तर कुछ न कुछ नई प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं जो लीक और परम्परा से हटकर होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. Weber Max, 1921, The City, Free Press.
2. Mumford, Lewis, 1961, City in History, Harcourt Brace and world Press.
3. Devid Risman, 1950, Lonaly Crown, Yale University Press.
4. Smith, Industrial Urban Growth.
5. Ghusiye G.S. , 1962, Indian Cities, Popular Publication Bombay.
6. Agrawal Amit 2010, Urban Society In India, Vivek Prakashan Delhi India.
7. Pandey Akhilesh Kumar, Unpublished 2021, Caste Status in Urban Society, Rachna Publishing House, New Delhi India.